समकालीन साहित्य
और
आदिवासी विमर्श

प्रधान संपादक

डॉ. आसिफ उमर

संपादक

मो. आज़म शेख

साहित्य संचय

ISO 9001 : 2015 प्रमाणित प्रकाशन

हम करते हैं समय से संवाद

© संपादक

ISBN : 978-93-88011-53-2

प्रकाशक

साहित्य संचय

बी-1050, गली नं. 14, पहला पुस्ता,
सोनिया विहार, दिल्ली-110090
फोन नं. : 09871418244, 09136175560
ई-मेल - sahityasanchay@gmail.com
वेबसाइट - www.sahityasanchay.com

ब्रांच ऑफिस

ग्राम : बहुरार, पोस्ट : ददरी
थाना : नानपुर, जिला : सीतामढ़ी
पटना (बिहार)

नेपाल ऑफिस

राम निकुंज, पुतलीसड़क
काठमांडौ, नेपाल-44600
फोन नं. : 00977 9841205824

प्रथम संस्करण : 2019
कवर डिजाइन : प्रदीप कुमार

मूल्य : ₹ 200/- (भारत, नेपाल)
मूल्य : $ 7/- (अन्य देश)

SAMKALEEN SAHITYA AUR ADIVASI VIMARSH
EDITED by Dr. Asif Umar & Mohd. Azam Shaikh

साहित्य संचय, बी-1050, गली नं. 14, पहला पुस्ता, सोनिया विहार, दिल्ली-110090 से **मनोज कुमार** द्वारा प्रकाशित तथा **श्रीबालाजी ऑफसेट**, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

अनुक्रम

	संपादकीय	5
1.	आदिवासी भगौरिया पर्व का सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन **जितेंद्रसिंह अवास्या**	9
2.	समकालीन साहित्य में आदिवासी जनचेतना **प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ**	15
3.	वैश्विक संदर्भ में आदिवासी समुदाय **अनीश कुमार**	20
4.	समकालीन साहित्य और आदिवासी-विमर्श **सुरेंद्र कुमार**	26
5.	आदिवासी-विमर्श के संदर्भ में 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास **सीमा देवी**	52
6.	आदिवासी विस्थापन की त्रासदी **संजय कुमार सिंह**	59
7.	आदिवासी जीवन और मुंडा समाज **ललिता गुप्ता**	66
8.	समकालीन साहित्य में आदिवासी जनचेतना **प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ**	78
9.	समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन **शांति लाल खराड़ी**	83
10.	समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन **दीपक कुमार थापा** **उत्तम चंद**	90
11.	आदिवासी जनजीवन का यथार्थ-ग्लोबल गाँव के देवता **सारिका राजाराम कांबळे**	95
12.	भारतीय परिदृश्य में आदिवासी **डॉ. बलराम गुप्ता**	100

वैश्विक संदर्भ में आदिवासी समुदाय

अनीश कुमार
शोधार्थी, पी-एच.डी. शोध छात्र, हिंदी विभाग
सांची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
बारला अकादमिक परिसर, रायसेन, मध्य प्रदेश
Email: anishaditya52@gmail.com

आदिवासी विश्व के लगभग सभी भू-भागों में निवास करते हैं। वैश्विक स्तर पर इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। भारत में आदिवासियों की आबादी अफ्रीका के बाद सर्वाधिक है। ऐसा माना जाता है ये सब भारतीय प्रायद्वीप के मूलनिवासी हैं। पाश्चात्य लेखकों के अनुसार, "आदिवासी शब्द का अर्थ समान्यतः भौगोलिक दृष्टि से विलग अथवा अर्द्ध-विलग एक नृवंशी समूह है, जिन्हें एक निश्चित सीमा की परिधि में पहचाना जाता है और जिनकी सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परंपराएँ तथा प्रथाएँ भिन्न हैं।"[1]

वैश्विक स्तर पर आदिवासियों को भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। 'आदिवासी' शब्द का प्रचलन उन्नीसवीं सदी में शुरू हुआ। इस शब्द का चयन-आविष्कार अँग्रेजी के 'ट्राइब' शब्द के पर्याय की खोज से शुरू होता है। "रिजले, लेके, ग्रिगसन, सोजर्ट, टेलेण्ट्स, सेजनिक, मार्टिन तथा ए.वी. थक्कर ने उन्हें 'आदिवासी' (एबोरिजनल) नाम से पुकारा है। हट्टन ने इन्हें 'आदिम जातियाँ' (प्रीमिटव ट्राइब्स) नाम से संबोधित किया है। सर बेन्स ने इन्हें 'पर्वतीय जनजातियाँ' (हिल ट्राइब्स) की संज्ञा दी है। टेलेण्ट्स सेजनिक तथा मार्टिन ने उन्हें सर्वजीववादी (एनीमिस्टस) कहते हैं। विकिपीडिया में 'आदिवासी' शब्द को 'एबोरिजिनल्स' के रूप में लिया गया है। इसके अनुसार "इस शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है, जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना संबंध रहा हो। परंतु संसार के विभिन्न भू-भागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग

किया जाता है।" अमेरिका में आदिवासियों को 'रेड इंडियन' नाम से संबोधित किया जाता है। मानवशास्त्री साहित्य में अँग्रेजी शब्द 'ट्राइब' के रूप में 'आदिवासी' शब्द को लिया गया है साथ ही इसके कई समानार्थक शब्दों को भी उद्धृत किया है। उदाहरणः 'आदिम' (प्रिमिटिव), 'देशज' (इंडिजेनस), मूलनिवासी, जनजाति, गिरिजन, बर्बर, 'देशी जातियाँ' (एबोरिजिनल्स), 'मूलनिवासी' (नेटिव), 'भोला-भाला' (नैव), 'जंगली' (सेवेज), 'आरंभिक निवासी' (ओरिजनल सेटलर्स), 'सरल समाज', 'पिछड़ा हिंदू' (बैकवर्ड हिंदुज)"[5]

दुनिया में लगभग 3 अरब 70 करोड़ आबादी आदिवासियों अथवा मूल निवासियों की है जो कि विश्व की कुल जनसंख्या (करीब 6 अरब) का 6% होता है। यह 21वीं सदी की शुरुआत का आंकड़ा है जिसके अनुसार दुनिया में 5000 से अधिक आदिम समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के साथ निवास करते हैं। अगर अफ्रीकी देशों को छोड़ दिया जाए तो विश्व के 72 देशों में से भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जहाँ देशज, आदिवासी अथवा मूलनिवासियों की जनसंख्या सबसे अधिक है। भारत में मूलवासी एवं आदिवासी को एक ही माना गया है।

आदिवासी समाज अपनी मूलभूत सुविधाओं को पूरा करने के लिए जल, जंगल और जमीन पर पूरी तरह निर्भर था। दुनिया के अधिकांश भागों में आदिवासियों का जंगलों से गहन रिश्ता था। वैश्विक स्तर पर देखें तो उनका यह रिश्ता प्रकृति के सबसे अधिक नजदीक ले जाता है। उनका प्रकृति के साथ परिवार जैसा व्यवहार रहता था जो आज भी है। ''सोलहवीं से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यूरोप और अमेरिका के साम्राज्यवादी का जंगल नष्ट करने का अभियान इतने बृहद् पैमाने पर चला कि दुनिया के अधिकांश जंगल आदिवासियों के नियंत्रण से बाहर चले गए और कटते चले गए। आस्ट्रेलिया के आदिवासी (एबोरिजनल) तो पूरी तरह अपने अधिकारों से वंचित हो हाशिये पर चले गए और उनके पूरे भूभाग पर गोरे लोगों का आधिपत्य हो गया। अब सब-कुछ होने पर वे अपने अस्तित्व और हक कि कानूनी लड़ाई लड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

सभ्यता के आरंभ से लेकर वैश्वीकरण की प्रक्रिया का दबाव किस तरह से असुर समुदाय को खत्म करने पर तुली है इसका उल्लेख 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में बखूबी दिखाया गया है– "हम वैदिक काल के सप्तसिंधु के इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ़, शाहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते इस वन-प्रांतर कीकट, पौंड्रिक, कोकराह या चुटिया नागपुर पहुँचें। हजार सालों से कितने पांडवों कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किए, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल

लोककथाओं और मिथकों में हम जिंदा हैं। ..... लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास से सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा-कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया।"[4]

साहित्य व समाज का अंतरसंबंध देखें तो वैश्विक स्तर पर वैसे ही दिखाई देता है जैसे भारतीय साहित्य में। समाज व प्रकृति में हो रहे बदलावों को साहित्य अपना विषयवस्तु बनाने की कोशिश करता है। कवि लेखक इससे अछूता नहीं रहे हैं। अर्जेन्टीना में मेंदोसा राज्य का एक शहर 'मलाख्वे'। वहाँ पर एक गुफा है जिसे आज डरावनी गुफा के नाम से जानते हैं। कवयित्री शोभा सिंह जी अर्जेन्टीना के एक डरावनी गुफा का वर्णन अपने कविताओं के माध्यम से प्रकट करती है। वहाँ मूलतः आदिवासियों का निवास है। औपनिवेशिक काल में आक्रांतियों द्वारा आदिवासी महिलाओं को जबरन उठा लिया जाता था। कुछ महिलाएँ वापस भागने में सफल हो जाती थी किंतु जो असफल होती थी उनके पैरों के तलवों को छील दिया जाता था ताकि वह भागने का प्रयास न कर पाये। ये महिलाएँ रात के समय में खाने की तलाश में निकलती थी। इनके रोने की आवाज वीभत्स होती था। मुख्य धारा का समाज इनका उपभोग करके इन्हें प्रताड़ित करता था। कविता के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं–

कहानियाँ बहुत सी
आदिम आदिवासी की शरणस्थली
गर्मी, सर्दी की शांत आड़
सदियों की मारा-मारी
सभ्यता का बर्बर रूप
जबरन छील दिये गए
तलवे की पीड़ा से
छुप कर रोती स्त्रियों की
बेबस आवाजें
बाहर की दुनियाँ में
डायनों की कथा में
समेट दी गई
दर्द की करवट लेती कराहें
दीवारों की सलवटों में कैद
अपनी मौजूदगी की गूंज
हवा के झोंको के साथ
हिलमिल कर दस्तक देतीं।"[5]

'विकास' अथवा 'विकास करना' वैश्विक स्तर पर सुनने व देखने को मिलता है। ये देश विकास कर गया, वह अभी पीछे है, यह प्रतिस्पर्धा मनुष्य को विकास की दौड़ में सबसे पहले-सबसे की लत लगा दी। एक देश ही दूसरे देश के विकास में बाधक बनता चला गया । खुद सरकारें ही अपने ही नागरिकों के हितों की अनदेखी करके विकास के अंधी दौड़ में छलाँग लगा दी। इस विकास से सबसे ज्यादा मनुष्य का विस्थापन हुआ है। 'विकास या विकास का आतंक' पदबंध का सबसे पहले प्रयोग अर्थशास्त्री अमित मादुड़ी ने किया। उनकी एक पुस्तक का शीर्षक ही 'विकास का आतंक' था जो सन् 2011 में 'फिलहाल प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित हुई थी जिसमें 'विकास के मॉडल' को प्रश्नांकित किया गया था जो गरीबों-वंचितों को ज्यादा गरीब-वंचित बनाता है और संपन्नों को ज्यादा संपन्न। राजसत्ता कॉरपोरेट्स के पक्ष में अपनी ही जनता के आर्थिक हितों के विरुद्ध कार्य करती है। चूँकि विश्व के लगभग सभी विकासशील देशों ने विकास के यूरोपीय मॉडल को हूबहू अपनाया है अतएव वृहद् परियोजनाओं के साथ-साथ बड़ी आबादी का विस्थापन एक अपरिहार्य घटना है। बोगुमिल सेरामिन्सकी, (पोलैंड के शोध लेखक), एंथोनी ओलिवर स्मिथ (फ्लोरिडा के मानवशास्त्री) एवं माइकल एम सेर्निया (अमेरिकन-रोमानिया समाजविज्ञानी) के अध्ययन के अनुसार वृहद् विकास परियोजनाओं से पूरी दुनिया में लगभग 15 मिलियन लोग प्रत्येक वर्ष विस्थापित होते हैं। विस्थापितों में बड़ा प्रतिशत आदिवासी लोगों का है। मानवाधिकार के संदर्भ में देखें तो विस्थापितों को 'गरिमा पूर्ण जीवन जीने' के मूलभूत अधिकार से ही वंचित होना पड़ता है। उसका जीवन आधार, खेती की भूमि से वंचित होते और गाँव के छूटते ही वह रोजगारविहीन, गृहविहीन हो जाता है। खाद्य असुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण मातृ-शिशु मृत्युदर में अभिवृद्धि आदि विस्थापन के साथ अपरिहार्य रूप से संबद्ध हैं। गाँव से दूरी उसकी सामुदायिक संपदा तक पहुँच को समाप्त कर देती है। समुदाय के साथ रहने के कारण मिलने वाली सामाजिक-मानसिक सुरक्षा खत्म हो जाती है। वह अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान से महरुम हो जाता है। नई असुरक्षित जगह पर उसके और उसके परिवार के सदस्यों को अक्सर शारीरिक और यौन हिंसा से रूबरू होना पड़ता है।

विस्थापन के कारण कुछ भी हों विस्थापित व्यक्ति के मानवाधिकारों के हनन की प्रकृति एक तरह की होती है। वह जीवन जीने के मूलभूत प्राकृतिक अधिकार से ही वंचित हो जाता है। उसके जीवन से 'गरिमा' लुप्त हो जाती है। उसके प्राण और देह निरंतर असुरक्षा के दबाव में रहते हैं।

विकास से विस्थापन आदिवासियों का पलायन और विस्थापन सदियों से होता रहा है और ये आज भी जारी है। आदिवासियों के जंगलों, जमीनों, गाँवों,

संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें दर-दर भटकने के लिए मजबूर करने के पीछे मुख्य कारण हमारी सरकारी व्यवस्था रही है। वे केवल अपने जंगलों, संसाधनों या गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी वे बेदखल कर दिए गए हैं। हमारे मौलिक सिद्धांतों के अंतर्गत सभी को विकास का समान अधिकार है।

विश्व स्तर पर विस्थापन सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने आई है। स्वतंत्रता आदिवासी समुदाय की सबसे बड़ी पूंजी है। अफ्रीका के बड़े आदिवासी लेखक न्गुगी वा थ्योंगो लिखते हैं "जो लोग स्वतंत्रता की चाह करते हैं और उसके लिए संघर्ष करते हैं। उनका साहित्य हमारा साहित्य है, उन सबका साहित्य जो शोषण, उत्पीड़न और मनुष्य की रचनात्मकता के घटाने वाली चीजों से नफरत करते हैं और उनके विरुद्ध संघर्ष करते हैं, उन सबका साहित्य हमारा साहित्य है।"

साहित्य के माध्यम से विश्व की लगभग सभी समस्याओं को लिखने का प्रयास किया गया है। आदिवासियों की विश्वभर में भूस्वामित्व से वंचित होते जाना आज सबसे बड़ी समस्या बन गया है। इसने आधुनिक विकास के क्रूर विडंबना को तो उजागर किया ही है। नक्सलवाद से उपजे संकट को भी देश के सामने ला खड़ा किया है। आश्चर्य की बात यह है कि उनके क्षेत्र में बनाई विभिन्न परियोजनाओं का लाभ उन्हें कम बल्कि गैरआदिवासियों को अधिक मिलता है।

"जर्मन कवि होल्डरलिन नाम के जर्मन कवि की पंक्तियाँ आधुनिक संदर्भ में आदिवासी जीवन और अस्मिता की विडंबना के मर्म को इंगित करती हैं। पंक्तियाँ अनुवाद में कुछ इस प्रकार है–

"हम वे चिन्ह हैं जिन्हें देखा नहीं जाता
दुख के एहसास से परे,
अपनी वाणी भी हम करीब खो चुके
पराई हुई जमीन पर"

जनजातियाँ विभिन्न तरह की हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार वे 90 देशों में फैली हैं, 5,000 अलग-अलग संस्कृतियाँ और 4,000 विभिन्न भाषाएँ। इस बहुलता के बावजूद या उसकी वजह से ही उन्होंने एक तरह के संघर्ष झेले हैं, चाहे वे ऑस्ट्रेलिया में रहते हों, जापान में या ब्राजील में। उनका जीवन दर कम है, गैर आदिवासी समुदायों की तुलना में स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच कम है। उनकी आबादी दुनिया की 5 प्रतिशत है लेकिन गरीबों में उनका हिस्सा 15 प्रतिशत है।

संदर्भ

1. एस.एल. दोषी, पी.सी. जैन, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, पृष्ठ संख्या 151
2. सर बेन्स, इथनोग्राफी, पृष्ठ 112-113
3. उपाध्याय, शंकर विजय, पंडिय, गया, जनजाति विकास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ संख्या 1
4. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, पृ. 43, 83
5. शोभा सिंह, कवेनांस दे बृक्षास (डायनों की आदिम गुफा) कविता, कथांतर पत्रिका, सं. राणा प्रताप, जनवरी 2016, आदिवासी विशेषांक।
6. मुख्य पृष्ठ, कथांतर पत्रिका, (सं.) राणा प्रताप, जनवरी 2016, आदिवासी विशेषांक, पृष्ठ 6
7. सुरेश शर्मा, आधुनिकता और आदिवासी, दस्तक पत्रिका, सं. राघव आलोक, झारखंड, अंक 13-15, पृष्ठ 33